इस्लाम और इंसानी हुकूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़्वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(9)

पिछले मज़मून में क़बील-ए-ख़ुज़ैमा का वाक़िआ पढ़ने वालों की ख़िदमत में पेश किया गया। अक़्ल हैरान है कि आज से चौदह सौ साल पहले जबकि हर तरफ जंगलराज का ज़माना था। तहज़ीब और इंसानियत का नामो निशान न था। अरब के वहशी देहातियों में दुश्मन के लिए रहम की हल्की सी भी किरन न थी। उस वक़्त इस्लाम ने जंग के ऐसे क़ानून बनाए कि जिन तक आज की एडवांस, मुहज़्ज़ब, कल्चरल और इंसानी हुकूक़ का ढिंढोरा पीटने वाली दुनिया अभी तक नहीं पहुँच सकी है। जिनेवा कन्वेंशन के क़रारदाद में माद्दी नुक़सानों के पूरा करने के क़ानून तो मौजूद हैं, मगर सारे क़ानून मानवी नुक़सानों के बारे में ख़ामोश हैं। जंग की हौलनाकियों से कमज़ोर और लाचार लोगों को जो दिमाग़ी तकलीफ़ पहुँचती है, उसके इलाज का कोई क़ानून मौजूद नहीं है। कुछ साल पहले अख़बारों में ख़बर आई कि ब्रिटेन की रानी के महल बकिंघम का दरवाज़ा खुला हुआ था तो एक आदमी किसी तरह से महल में घुस गया। अचानक रानी के ख़ास कमरे का दरवाज़ा भी बंद न था इसलिए वह आदमी रानी के बेडरूम तक पहुँच गया। ब्रिटेन का क़ानून है कि अगर किसी के घर का दरवाज़ा खुला हुआ हो तो किसी आने वाले को इजाज़त की ज़रूरत नहीं है (जबकि क़ुरआन का हुक्म है कि किसी के घर में बिना इजाज़त मत घुसना, दरवाज़ा बंद होने या खुला होने की कोई शर्त नहीं) ब्रिटेनी क़ानून के तहत उस आदमी पर कोई मुक़द्दमा नहीं चल सकता था क्योंकि उसने कुछ नुक़सान नहीं पहुँचाया था। बहुत सोच-विचार के बाद ये तै किया गया कि उसके वहाँ होने से ब्रिटेन की रानी को ज़हनी तकलीफ़ पहुँची इसलिए उस पर मेन्टल टार्चर (Mental Torcher) का मुक़द्दमा चलाया जाए। कितनी बड़ी ज़िल्लत की बात है कि ''सलमान रुश्दी'' की किताब ''शैतानी आयात'' और ''डेनमार्क'' के कार्टूनिस्ट के ''कार्टून'' से एक अरब से ज़्यादा मुसलमानों को जो ज़हनी तकलीफ़ पहुँची उसे अहमियत वाला नहीं समझा गया, लेकिन एक आवारा फिरने वाले के इस काम से रानी को जो थोड़ी सी ज़हनी तकलीफ़ पहुँच गई उसे सज़ा के लायक़ क़रार दिया गया।

जंगी क़ैदी और जंग में होने वाले ज़ख़्मी हमेशा से जंग जीतने वाले नौजवानों के बुरे सुलूक और ज़ुल्म और सितम के शिकार रहे हैं। जंगी क़ैदियों की ज़िंदगी मौत से बदतर होती थी, घायलों को या तो बेरहमी से क़त्ल कर दिया जाता था या तड़प-तड़प कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता था। यूरोप में सबसे पहले सुइस बैंकर हेनरी डोनान ने रेड क्रास सोसाइटी की बुनियाद डाली। 1859ई० में उसने सफ़र के दौरान आस्ट्रेलिया और फ्रांस की फ़ौजों के बीच ख़ूनी जंग का नज़ारा देखा। उसने देखा कि हज़ारों घायलों को जलते हुए रेगिस्तान में ख़ून बहते हुए, ज़ख़्मों, भूख, प्यास और सख़्त गर्मी की हालत में मरने के लिए छोड़ दिया गया था। लाशों को एक बड़े से गढ़े में डाल दिया गया और उनके साथ बहुत से घायल लोगों को भी फेंक दिया गया। डोनान आसपास के देहातों में गया और वहाँ के लोगों को घायलों की मदद के लिए तैयार किया और यहीं से रेडक्रास की बुनियाद पड़ी और 1863ई० में पूरी तरह इसको बनाया गया। इस्लाम ने दुश्मन फ़ौज के घायलों

के साथ अच्छा सुलूक करने के नमूने पहले ही पेश कर दिये हैं। हज़रत अली[अ०] ने अपने फ़ौजियों को ख़ास कर कहा था कि अगर "अल्लाह की मदद से दुश्मन हार जाए तो जो भाग रहे हों, उन्हें क़त्ल न करना, जो दुश्मन अपने बचाव पर ताक़त न रखता हो उसे नुक़सान न पहुँचाना, किसी घायल को क़त्ल न करना"। (नहजुल बलाग़ह नामा-14 पेज-280) नहरवान की जंग में हज़रत अली[अ०] ने दुश्मन के चालीस घायलों को अपनी राजधानी कूफ़ा भेज दिया, जहाँ उनका पूरा इलाज करवाया गया। (इब्ने असीर, अल-कामिल फ़ित्तारीख़, जिल्द-2 पेज-424/अल-बलाज़री, अन्साबुल अशराफ़, जिल्द-3 पेज-284) दुश्मन फ़ौज के चार सौ घायलों को उनके रिश्तेदारों के हवाले कर दिया ताकि वह ख़ुद उनका इलाज करवाएं। (तारीख़े तबरी, जिल्द-4 पेज-66) दुश्मनों के साथ ये वह बेमिसाल तरीक़ा है जिसकी मिसालें सिर्फ़ इस्लाम ही में मिलेंगी।

यहूदियों ने ईसाई क़ैदियों पर बहुत ज़ुल्म और सितम किए हैं। यहूदी बादशाह ज़ु-नवास ने जब नजरान पर हमला किया तो वहाँ के ईसाइयों को जिंदा जला दिया, जिसकी तरफ़ क़ुरआन मजीद में भी इशारा मौजूद है। मतलबः "और मौत आ जाए आग से भरी ख़न्दक़ वालों पर, जबकि उनके किनारे बैठे हुए थे और ईमान वालों के जलने का नज़ारा देख रहे थे। ये मोमिनों से सिर्फ़ इस बात का बदला ले रहे थे कि वह ज़बरदस्त और ताक़तवर ख़ुदा पर ईमान लाए थे।" (सूरह अल-बुरूज, आयतः 2-8) ज़ुल्म ये है कि यहूदी ये सभी ज़ुल्म अपनी मज़हबी किताब तौरेत को बुनियाद बनाकर अंजाम दिया करते थे, मतलबः "हमारे ख़ुदा यहूद ने हमें सेहून मुल्क ख़श्बून पर जीत दी। हम ने वहाँ के सारे रहने वालों को बर्बाद कर दिया, किसी मर्द, औरत या बच्चे को ज़िन्दा नहीं छोड़ा।" (तौरेत, सफर तसनिया, बाबः 2 आयतः 1-7)

ग्यारहवीं सदी ईसवीं के आख़िर से लेकर तेरहवीं सदी के ख़ातमें तक, ईसाईयों और मुसलमानों के बीच 8 सलीबी जंगें हुईं। इन सभी जंगों की इंसानी तारीख़ में मिसाल नहीं मिलती। एक ईसाई लिखने वाला 'गुस्ताबोलून' ने ख़ुद इक़रार किया हैः "मुसलमानों के साथ ईसाईयों का सुलूक इन जंगों में साबित करता है कि कि उनसे बढ़कर वहशी और बेदर्द ज़मीन पर कोई न था। ये दोस्त-दुश्मन, फ़ौजी-ग़ैर फ़ौजी, मर्द और औरत, छोटे-बड़े की कोई तमीज़ नहीं करते थे और सबको बेदर्दी से क़त्ल कर देते थे।" बैतुल मुक़द्दस में ईसाईयों ने जिस तरह मुसलमानों का ख़ून बहाया है उसको रार्बट नाम के ईसाई राहिब ने ख़ुद बयान किया हैः "हमारे फ़ौजी शहर की गलियों, मैदानों और मकान की छतों पर घूम रहे थे ताकि मुसलमानों के ख़ून से अपनी प्यास बुझा सकें। ये फ़ौजी बच्चों, बूढ़ों और जवानों को क़त्ल कर रहे थे और उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे। बैतुलमुक़द्दस की गलियाँ लाशों से पटी पड़ी थीं और ख़ून नहर की तरह बह रहा था..... 12 दिसम्बर इतवार के दिन तुर्कों का आमतौर पर ख़ून बहाया गया, क्योंकि एक ही दिन में सबको क़त्ल करना मुमकिन न था इसलिए हमारी फ़ौज ने दूसरे दिन दोबारा क़त्ल करना शुरु किया.... अफ़सोस-अफ़सोस उन संगदिल अंधों पर। हक़ीक़त में उन सब लोगों में एक भी मसीह के बेटे का सच्चा भरोसे वाला न था।" (गुस्ताबोलोन, तमद्दुने इस्लाम व अरब) **(जारी)**

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 25 मार्च 2011ई०)

शेष..... उसूले दीन ....

अपने धन पर गर्व न करना चाहिए और किसी को अपने निर्धनता से दुःखित तथा हताश न होना चाहिए।

शिष्टाचार सर्वसाधारण के लिए मुक्ति का एक उत्तम मार्ग तथा उसका एक समान पूर्वि है। पाप चाहे अमीर करे या ग़रीब दोनों दंड के भागी होंगे। इसी भाँति पुण्य चाहे धनी करे या निर्धन दोनों पुरस्कृत किये जाएंगे।

अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिए तथा अपने कर्मों में सचेष्ट रहना चाहिए।

प्रत्येक कर्म में उसकी सीमा से आगे बढ़ना या पीछे रह जाना दोनों अधर्म हैं। मानुषिक व्यवहार अपनी सीमा से आगे पीछे न हों।

जो भी कुछ कहें अथवा करें, मानवता की सीमा के बाहर न हो। इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य न्यायी कहलाता है।

अल्लाह को न्यायी मानने वाले मनुष्यों को स्वयम् भी अपने-अपने कर्मों में न्याय को प्रथम तथा ऊँचा स्थान देना चाहिए। अपने कर्तव्यों को पालन करने वाला और सच्चा मुसलमान वही है जिसके जीवन के प्रत्येक कर्म न्याय पूर्ण हों। इसके विपरीत जिनके कर्मों में न्याय का स्थान नहीं है उसके सच्चे मुसलमान होने में संदेह हैं।